International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(7): 71-74

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(7): 71-74
© 2015IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 16-09-2015
Accepted: 19-10-2015

डॉ0 हेमवती नन्दन पनेरु
असिस्टेंट प्रोफेसर (संविदा),
संस्कृत विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय
नैनीताल, उत्तराखण्ड

Correspondence
डॉ0 हेमवती नन्दन पनेरु
असिस्टेंट प्रोफेसर (संविदा),
संस्कृत विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय
नैनीताल, उत्तराखण्ड

उपनिषदों में मानव का जीवनदर्शन

डॉ0 हेमवती नन्दन पनेरु

भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेद का स्थान नितान्त गौरवपूर्ण है। वेद का अर्थ होता है जानना या ज्ञान। संसार में मानव किसी वस्तु को पहचाने विना कोई भी कार्य करने में असमर्थ रहता है उस असमर्थता को समर्थ बनाने तथा अपने जीवन को सन्मार्ग के पथ में चलाने के लिए मानव को वेदरुपी अमृत तत्त्वों के ज्ञान की आवश्यकता होती है। वेद पितृगण, देवता तथा मानव का सनातन, सर्वदा विद्यमान रहने वाला चक्षु है। संसार में लौकिक वस्तुओं के साक्षात्कार के लिए जिस प्रकार नेत्र की आवश्यकता है उसी प्रकार अलौकिक तत्त्वों को जानने के लिए वेद की उपादेयता है–

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते। एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता [1]।।

वर्तमान समय में समयाभाव कहें या पाश्चात्य संस्कृति के संस्कारों में लिप्तता, मानव अपने जीवन में भारतीय संस्कृति के उद्देश्यों को भूलता जा रहा है। वह सांसारिक जीवन के स्वार्थ में इतना लिप्त हो जाता है कि उसको अपने सुख के सम्मुख अन्य कुछ भी नहीं दिखायी देता है परन्तु यदा कदा जब कोई विपदा आने लगती है तब पुनः वह अपनी संस्कृति और सभ्यता को जानने के लिए भारतीय संस्कृति के आदि ग्रन्थ वेद आदि की शरण में आकर पुनः अपने मार्ग में चलने लगता है। विद्वानों ने संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् इन चारों के संयोग को समग्र वेद तथा उपनिषद् को वेद का शीर्षभाग कहा है क्योंकि सम्पूर्ण मानव जीवन का तत्त्वज्ञान तथा धर्मसिद्धान्तों का मूल स्रोत इसी में निहित है। उपनिषद् वस्तुतः वह आध्यात्मिक मानसरोवर है जिससे ज्ञान की भिन्न–भिन्न सरितायें निकलकर इस पुण्यभुमि में मानवमात्र के ऐहिक कल्याण लिए प्रवाहित होती है [2]।
उपनिषद् का विशिष्ट अर्थ है उपसामीप्येन नि – नितरां प्राप्नुवन्ति परं ब्रह्म यया विद्यया सा उपनिषद् अर्थात् जिस विद्या के द्वारा परब्रह्म का सामीप्य एवं तादात्म्य प्राप्त किया जाय वह उपनिषद् है। इसको एक शब्द में ब्रह्मतत्त्व भी कहते हैं [3]। उपनिषद् में सद् धातु ''सदॢ विशरण–गत्यवसादनेषु'' अर्थ में भी निष्पन्न होता है जिसमें विशरण अर्थात् अज्ञान का नाश होना, गति अर्थात् ब्रह्म को पाना या जानना, अवसादन अर्थात् त्रिविध दुःखों का शिथिल होना है। [4] उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति जो आज समाज में अधिक प्रचलित है वह 'उप' एवं 'नि' उपसर्गक सद् (बैठना) धातु और क्विप् प्रत्यय से निष्पन्न हुआ है। जिसका अभिप्राय शिष्य का गुरु के समीप में विनम्रता पूर्वक बैठकर आध्यात्मिक शिक्षा का ज्ञान प्राप्त करना होता है। इस आध्यात्मिक ज्ञान से मानव के जीवन का सम्पूर्ण अज्ञान नष्ट हो जाता है और वह जन्म मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है–

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे [5]।।

उपनिषद् में मानव जीवन को दर्शाते हुए कहा गया है कि सृष्टि में जो कुछ भी जड अथवा चेतनता है वह सब ईश्वर द्वारा आवृत और आच्छादित है। मानव को इनके द्वारा बताये गये मार्ग का अनुसरण करते हुए काम, क्रोध, लोभादि का सम्पूर्ण त्याग करना चाहिए। इस संसार में जो भी वस्तु हमें प्राप्त होती है वह सब किसी अन्य के माध्यम से नहीं अपितु ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होती है,[6] परन्तु जो मानव मात्र शरीर एवं इन्द्रियों के शक्ति पर निर्भर तथा विवेकता की उपेक्षा करता है वह आत्मतत्त्व को न जानने वाला मानव जीवनभर महान अन्धकार से घिरा रहता है तथा शरीर के त्याग करने पर भी अन्धकार युक्त लोकों को प्राप्त करता है। मानव एक समय में एक ही कार्य कर सकता है परन्तु ईश्वर अनेक कार्यों का सम्पादन एक समय में कर सकता है। अविचल एक ईश्वर ही है जो मन से भी अधिक वेगवान है। ईश्वर गतिशील और स्थिर के साथ ही साथ दूर से दूर भी और निकट से निकट भी है वह इस जङ चेतन जगत के अन्दर तथा बाहर भी आवृत्त हुआ है।[7] श्वेताश्वतरोपनिषद् में बताया है कि परमात्मा अपने अन्तः करण में भी उसी प्रकार छिपा रहता है जिस प्रकार तिल में तैल,

दही में घी, स्रोत में जल एवं काष्ठ में अग्नि आदि तत्त्व छिपा रहता है परन्तु मानव उसे सत्य और तपस्या के द्वारा ही प्राप्त करता है –

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरावः स्रोतस्स्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्मनिगृह्यतेऽसौ सत्येनैवं तपसा योऽनुपश्यति [8]।।

उपनिषद् जीवनदर्शन के माध्यम से मानव को श्रेष्ठ मार्ग एवं ऐश्वर्य की ओर ले चलने, कर्म मार्ग का श्रेष्ठ ज्ञान कराने तथा कुटिल पाप कार्यों से बचाने के लिए प्रेरित करता है [9]। इसमें सुखादि की प्राप्ति और दुःखादि से निवृत्ति के लिए उत्कृष्ट प्रकार से दान देने को बताया है। नचिकेता कहते हैं कि जो गायें जल पी चुकी हैं, घास खा चुकी हैं, जिनका दूध भी दुहा जा चुका है, जो किसी को जन्म देने में भी असमर्थ हैं मेरे पिता सुख की प्राप्ति के लिए इस प्रकार की गायों का दान कर रहे हैं जो निन्दनीय है किन्तु पिता के सुखादि से दूर तथा नरकादि लोकों को प्राप्त होने के भय से पिता के रक्षार्थ स्वयं को ही यम को दान देने को कहा जिसके परिणाम स्वरुप पिता धर्म की रक्षा करते हुए असमर्थ गायों का दान न कर सकें, तथा वरदान स्वरुप में पिता को क्रोधरहित प्रसन्नमय और अपने प्रति पूर्ववत् व्यवहार की प्रार्थना की।[10] उपनिषद् में कहा गया है कि समाज की रक्षा के लिए पुत्र को अपना दान भी देना हो तो दे देना चाहिए परन्तु पिता को भी सन्मार्ग में चलते हुए धर्म की रक्षा करनी चाहिए। संसार में कैसी भी परिस्थिति आने पर पिता को कभी भी अनर्थमूलक शब्दों का प्रयोग न करते हुए हमेशा सदाचारी बना रहना चाहिए, यतोहि मरणधर्मा मानव फसल की भॉति समय पर जर्जर होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है और पुनः उत्पन्न हो जाता है।[11]

उपनिषद् सांसारिक जीवनयापन के साथ इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखने तथा दुष्कर्म के पाप से निवृत्ति का ज्ञान प्रदान कराता है। बुद्धिमान मानव सर्वप्रथम वाक् आदि इन्द्रियों को मन में धारण करे, मन को ज्ञानस्वरुप बुद्धि में निरुद्ध करे, बुद्धि को आत्मा में विलीन करे और अन्त में उस आत्मा को परमात्मा में लीन कर पापों से अपने दूर कर सकता है।[12] मनीषियों ने इन्द्रियों को अश्व की संज्ञा दी है जो मानव सदा विवेकहीन बुद्धि वाला और अनियन्त्रित इन्द्रियों वाला होता है उसकी इन्द्रियाँ उसी प्रकार उत्श्रृंखल हो जाती हैं जिस प्रकार अविवेकी सारथि के दुष्ट अश्व, क्योंकि आत्मा शरीररुपी वाहन का स्वामी, शरीर आत्मा का वाहन, बुद्धि उस वाहन का संचालक तथा मन उसका लगाम होता है–

आत्मानः रथिनं वृद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।[13]

विश्व में मानव के समक्ष श्रेय अर्थात् कल्याणकारक और प्रेय अर्थात् सांसारिक भोग पदार्थ ये दोनों ही मार्ग उपस्थित होते हैं। विवेकशील मानव अच्छी प्रकार से विचार करके प्रिय लगने वाले साधनों को त्यागकर कल्याणकारक मार्ग का चयन करता है परन्तु मन्दमति मानव बाह्य आकर्षणों के वशीभूत होकर प्रेय पदार्थ अर्थात् सांसारिक भोगों का ही सेवन करने में लगा रहता है।[14] वह अज्ञान के अन्धकार में स्थिर होकर गलत कर्ममार्गों का सहारा लेते हुए ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जैसे एक अन्धे के द्वारा अन्य अन्धे को ले जाया जा रहा हो –

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।।[15]

प्रेय के लुभावने से धन में जकडा हुआ विवेकहीन, प्रमादी, अज्ञानी वह मानव जीवन के अस्तित्व को प्रत्यक्षवाद पर ही आधारित मानता है और निरन्तर जन्म मरण के बन्धनों में घिरा रहता है।[16] परन्तु श्रेय मार्ग आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कराते हुए परमात्मा की प्राप्ति कराता है। यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत है यह मानव के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता है। यह आत्मा न तो किसी को विनष्ट करता है और न किसी के द्वारा मारा जाना शक्य है

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुः हतश्चेन्मन्यते हतम्।।[17]

वर्तमान काल के इस आधुनीकरण में मानव अहंकारवसात् ईश्वरीय शक्ति का त्याग कर रहा है जिसके फलस्वरुप मानव अनेक दुःखों के तापों से सन्तप्त रहता है। वह कभी सूर्य, वरुणादि के प्रकोप से तो कभी शारीरिक मानसिक रोगों से इतना रुग्ण हो जाता है कि जिसके उपरान्त उसका निवारण असम्भव सा प्रतीत होता है। उपनिषद् में इन तापों के समन के लिए ''शं नो मित्रः । शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा।'' आदि मन्त्रों की स्तुति के द्वारा सुख प्रदान[18] तथा हमेशा ईश्वर से मैं अमृत स्वरुप परमात्मा को प्राप्त करने वाला, मेरा शरीर स्फूर्तिमय, मेरी वाणी मधुरभाषिणी एवं मेरे कर्ण शुभ वचनों को सुनने वाले आदि की प्रार्थना करनी चाहिए।**[19]** प्राचीन समय में वेदाध्ययन के पश्चात् जब शिष्य समाज में अपने दायित्वों की पूर्ति के लिए निकलता था तो गुरु अपने उन शिष्यों को जीवनदर्शन का ज्ञान कराते हुए कहते थे कि हमेशा सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। धर्मान्न प्रमदितव्यम् । सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय में प्रमाद मत करो, आचार्य को अभीष्ट धन प्रदान करो, शुभ कार्यों में प्रमाद मत करो, प्रगति के लिए आगे बढो, देव और पितृ कार्यों का त्याग न करो, माता पिता शिक्षक अतिथि आदि को देवता समान समझो, जो भी संसार में दोष रहित कार्य हों वही कार्य करने [20] तथा अन्नादि का कभी तिरस्कार न करने आदि को महाव्रत बतलाया है 'अन्नं न परिचक्षीत'।[21] उन्होंने कहा है कि प्रत्येक मानव को सामर्थ के अनुरुप घर में आये अतिथि को अधिक आदर सम्मान पूर्वक भोजन कराना चाहिए जिससे स्वयं को भी अधिक आदर और सम्मान सहित भोजन प्राप्त होता है

एतद्वैमुखतोऽन्नराद्धम्। मुखतोऽस्मा अन्नराध्यते।[22]

ऋषियों ने उपनिषद् में मानव जीवन के अनेक अनुशासन बतलाये हैं जिसका अनुपालन करके मनुष्य लम्बी आयु पा सकता है और कर्मबन्धनों से मुक्त भी हो सकता है।[23] जिसके लिए मानव को मोह शोकादि से दूर रहते हुए आत्मतत्त्व के बोध अर्थात् स्वयं को जानने के लिए विद्या तथा अविद्या दोनों प्रकार के ज्ञान को प्राप्त करने को कहा क्योंकि अविद्या अर्थात् भौतिक ज्ञान और विद्या अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान दोनों का प्रभाव भिन्न है जहाँ अविद्या मानव को मृत्यु प्राप्त कराता है वहीं विद्या अमरता का दान देता है। इस आधुनिक संसार में स्वर्ग के लुभावने पात्र से सत्य का मुह ढका हुआ है इसलिए आत्म ज्ञान के माध्यम से सर्वप्रथम उस अज्ञान का नाश करके ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह मानव शरीर अग्नि वायु आदि पंचमहाभूतों के संयोग से निर्मित हुआ अन्ततः नष्ट हो जाता है इसलिए मानव को हमेशा परमात्मा का स्मरण रखते हुए अपनी सामर्थ्यानुसार कर्म करना एवं उसका स्मरण रखना चाहिए –

वायुरनिलममृतमथेदं, भस्मान्त शरीरम् ऊँक्रतो स्मर कृत स्मर क्रतो स्मर कृत स्मर।[24]

समाज में आज ही नहीं प्राचीन समय से ही अहंकार अपनी चरम सीमा में था एक समय ब्रह्म जी ने देवताओं के अहंकार को समाप्त करने के लिए यक्षरुप धारण किया और अग्निदेव, वायुदेव आदि देवताओं से पूछा कि आप में क्या शक्ति है। सभी देवताओं ने अपने अहंकार में अपनी शक्ति बतायी जिसमें सर्वप्रथम अग्निदेव ने कहा कि पृथ्वी में जो भी वस्तु है मैं उसे भस्म कर सकता हूँ। यक्ष स्वरुप ब्रह्म ने एक तिनका रख उसको भस्म करने को कहा परन्तु अपनी सम्पूर्ण शक्ति के बाद भी देवता भस्म नहीं कर सके । अन्ततः अग्नि वरुण आदि देवों ने ब्रह्म की शक्ति को पहचाना और ब्रह्म विद्या का ज्ञान प्राप्त किया । यहाँ पर ब्रह्म ने यक्ष के माध्यम

से इन्द्र, अग्नि और वायु आदि देवता का अहंकार को समाप्त कर मानव को सर्वदा अभिमान का त्याग करने की प्रेरणा दी है[25] और कहा कि मानव अपने जीवन में पाप समूह को विनष्ट कर, मन एवं इन्द्रियों को नियन्त्रण, तपस्या और स्वाध्याय पूर्णकर, आसक्ति रहित श्रेष्ठ कार्यों को करके ब्रह्मस्वरुप विद्या को प्राप्तकर सभी सुखों को प्राप्त कर सकता है।[26] संसार में एक ब्रह्म ही ऐसी शक्ति है जो किसी भी कार्य को करने में समर्थ है। मानव को हमेशा अपने हृदय को निर्मल रखना चाहिए क्योंकि उसी के बाद मानव प्रत्येक वस्तु के ज्ञान की प्राप्ति एवं आत्मतत्त्व के बल का ज्ञान प्राप्त होता है तथा उसी आत्मतत्त्व के बल को जानने की विद्या से अमृत स्वरुप परमात्मा को प्राप्त कर लेता है–

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्त्वं हि विन्दते। आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्।।[27]

जीवन को उपयोगी बताते हुए ऐतरेयोपनिषद् में कहा है कि मानव को हमेशा देवताओं की आराधना करनी चाहिए। देवता मानव के इन्द्रियों के साथ प्रत्येक अंग में भी निवास करते हैं। सूर्यदेव चक्षु में प्रकाशरुप और चन्द्रदेव हृदय में मन बनकर हमेशा आगे बढने की प्रेरणारुप तथा अग्निदेव वाणीरुप में विराजमान हैं।[28] जो मानव इस प्रकार परमेश्वर को जान लेता है वह स्वर्ग में जाकर दिव्य भोगों को प्राप्त करता हुआ ज्ञानी तथा अमरपद को प्राप्त करता है–

स एतेन प्रज्ञेनात्मनास्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान्कामानाप्त्वामृतःसमभवत् समभवत्।।[29]

मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि हमारे अन्तःकरण में ब्रह्म ही प्राणरुप में है परन्तु मानव काम, क्रोध, लोभ, मोह में लिप्त रहने और प्रत्येक समय दोषों से युक्त होने के कारण कुछ भी नहीं देख पाता है और हमेशा शोक सन्तप्त रहता है मानव को अपने अन्तःकरण में परमात्मा स्वरुप उस बह्म की प्राप्ति के लिए सत्यभाषण, सम्यकज्ञान, तपस्या, बह्मचर्यादि व्रतों का पालन करना चाहिए –

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।[30]

मानव को हमेशा सत्य बोलना चाहिए सत्य की ही विजय होती है असत्य की नहीं, सत्य से ही स्वर्ग अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति होती है।

सत्येन जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।[31]

मानव को हमेशा अपने अन्तःकरण को पवित्रता के आत्मज्ञानी बनाने की कोशिश करनी चाहिए जिसके पश्चात् आत्मज्ञानी जिस भी लोक का मन से चिन्तन तथा पुरुषार्थों से जिन कामनाओं को चाहता है वह उस लोक को और कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।[32]
आधुनिक समय के इस चकाचोंध में मानव अपने कार्यों में इतना व्यस्त हो चुका है कि वह अपने मन को स्थिर भी नहीं कर पा रहा है और सुःख से दूर होकर अपने जीवन को निरर्थक समझने लगता है परन्तु शिवसंकल्पोपनिषद् में ऐसे मानवों के लिए कल्याणकारी संकल्पों की बात कही है कि हे! परमात्मन् जो मन समस्त मानवों के शरीर में विद्यमान है, जो मन प्रकृष्ट ज्ञान से सम्पन्न, चेतनशील, धैर्यता से युक्त और समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में अमर प्रकाश ज्योतिरुप में स्थित है जिसके विना कोई भी कार्य किया जाना सम्भव नही है, जिस प्रकार कुशल सारथि लगाम के नियन्त्रण से चलायमान अश्वों को गन्तव्य पथ पर अभीष्ट दिशा में ले जाता है उसी प्रकार जरा रहित अतिवेगशील मन हमारे हृदय में रहते हुए मनुष्य को लक्ष्य तक पहुचाता है। ऐसा हमारा मन श्रेष्ठ कल्याणकारी संकल्पों से युक्त रहता है–

सुषारथिरश्वा निवयन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। [33]

स्कन्दोपनिषद् में शरीर को मन्दिर बताया है मानव को मन्दिर की तरह हमेशा अपने शरीर को पवित्र एवं सुन्दर बनाये रखना चाहिए क्योंकि मानव जब अज्ञानरुपी बाहरी कल्मषता का परित्याग कर देता है तो वह विशुद्ध रुप में शिव ही हो जाता है उसी प्रकार जैसे धान का छिलका लगे रहने पर व्रीहि और छिलका निकलने पर चावल हो जाता है।[34] मानव संसार के बन्धन में बधा हुआ चैतन्य तत्त्व जीव तथा कर्म के नष्ट होने पर शिव अर्थात् परमात्मा ही हो जाता है–

एवं बद्धस्तथा जीवः कर्मनाशे सदा शिवः।
पाशबद्धस्तथा जीवः पाश मुक्तः सदाशिवः।।[35]

निष्कर्षतः उपनिषद् में मानव के सम्पूर्ण जीवनदर्शन के विषय में बताया गया है कि इस संसार में जो भी कर्म होते हैं वह परमात्मा की शक्ति से ही होते हैं यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्मस्वरुप है 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'[36] यह संसार उसी से उत्पन्न और उसी में लय तथा उसी से संचालित होता है। मानव तो केवल निमित्त मात्र होता है। अतः मानव को प्रतिक्षण अहंकार का त्याग करते हुए परमात्मा का स्मरण करना चाहिए इसी में मानवजीवन निहित है।

सन्दर्भ सूची

1. पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति पृ0 3, पंचम संस्करण 2010, शारदा संस्थान, दुर्गाकुण्ड वाराणसी
2. पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति पृ0 240, पंचम संस्करण 2010, शारदा संस्थान, दुर्गाकुण्ड वाराणसी
3. उपनिषदों में तत्त्वज्ञान, जयदेव वेदालंकार पृ0 –1
4. पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति पृ0 241, पंचम संस्करण 2010, शारदा संस्थान, दुर्गाकुण्ड वाराणसी
5. मुण्डकोपनिषद् द्वितीयमुण्डक, खण्ड 2, मन्त्र 8,
6. ईशावास्योपनिषद् मन्त्र 1–2,
7. ईशावास्योपनिषद मन्त्र 3–6,
8. श्वेताश्वतरोपनिषद् प्रथम अध्याय मन्त्र 15,
9. ईशावास्योपनिषद् मन्त्र 18,
10. कठोपनिषद् अध्याय 1 प्रथमवल्ली मन्त्र 4,10,
11. कठोपनिषद् अध्याय 1 प्रथमवल्ली मन्त्र 6,
12. कठोपनिषद् अध्याय 1 तृतीयवल्ली मन्त्र 13,
13. कठोपनिषद् अध्याय 1 तृतीयवल्ली मन्त्र 3,4,5,
14. कठोपनिषद् अध्याय 1 द्वितीयवल्ली मन्त्र 1,2,
15. कठोपनिषद् अध्याय 1 द्वितीयवल्ली मन्त्र 5,
16. कठोपनिषद् अध्याय 1 द्वितीयवल्ली मन्त्र 6,
17. कठोपनिषद् अध्याय 1 द्वितीयवल्ली मन्त्र 19,
18. तैत्तिरीयोपनिषद् प्रथमोऽनुवाकः मन्त्र 1,
19. तैत्तिरीयोपनिषद् चतुर्थोऽवाकः मन्त्र 1,
20. तैत्तिरीयोपनिषद्एकादशोऽनुवाकः मन्त्र 1–4,
21. तैत्तिरीयोपनिषद् अष्मोऽनुवाकः मन्त्र 1
22. तैत्तिरीयोपनिषद् दशमोऽनुवाकः मन्त्र 1
23. 108 उपनिषद् ज्ञानखण्ड, युगनिर्माण योजना विस्तार गायत्री तपोवनभूमि मथुरा, उ0प्र0, संपादक –प0श्री राम शर्मा आचार्य भगवती शर्मा। पृ0 35
24. ईशावास्योपनिषद् मन्त्र 17,
25. केनोपनिषद् तृतीयखण्ड मन्त्र 2,
26. केनोपनिषद् चतुर्थखण्ड मन्त्र 8,9, ।
27. केनोपनिषद् द्वितीयखण्ड मन्त्र 4,
28. ऐतरेयोपनिषद् अध्याय 1 द्वितीयखण्ड मन्त्र 4,

29. ऐतरेयोपनिषद तृतीय अध्याय खण्ड 1 मन्त्र 4,
30. मुण्डकोपनिषद् तृतीयमुण्डकम् प्रथमखण्ड मन्त्र 5,
31. मुण्डकोपनिषद् तृतीयमुण्डकम् प्रथमखण्ड मन्त्र 6,
32. मुण्डकोपनिषद् तृतीयमुण्डकम् प्रथमखण्ड मन्त्र 10,
33. शिवसंकल्पोनिषद् मन्त्र 1–6 तक
34. स्कन्दोपनिषद् मन्त्र 6,
35. स्कन्दोपनिषद् मन्त्र 7,
36. छान्दोग्योपनिषद् अध्याय 3 खण्ड 14 मन्त्र 1,